संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० ३३

महाकवि आचार्य विद्यासागर विरचित

नर्मदा का नरम कंकर

(कविता संग्रह)

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

नर्मदा का नरम कंकर

कृतिकार : महाकवि आचार्य विद्यासागर

संस्करण : २८ जून, २०१७

(आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)

आवृत्ति : ११००

वेबसाइट : www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लाट नं. ४५, सेक्टर-एफ , इन्डस्ट्रीयल एरिया गोविन्दपुरा

भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को श्रृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई–बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार–निहार कर चल पड़े घर–द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा–हमेशा के लिए भव–भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से अनेक भाषाओं में अनुदित मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी–आध्यात्मिक–महाकाव्य का सृजन हुआ। जिस पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामत: मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी० लिट्०, पी–एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की शृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य

श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

आचार्य गुरुदेव द्वारा रचित जैनागम के अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद पाकर पाठकों को सुखद अनुभूति हुई। इसी तारतम्य में चतुष्पदी काव्य श्रृंखला के अतिरिक्त मुक्त छन्द की अतुकांत शैली में आपके चिन्तन का प्रसाद हम सभी को ३६ कविताओं के संग्रह स्वरूप ''नर्मदा का नरम कंकर'' नामक कृति प्राप्त हुई। इस काव्य संग्रह का लेखन सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरि में सन् १९८० वर्षायोग के काल में पूर्ण हुआ।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

‘नर्मदा का नरम कंकर’ कृति का उद्गम

नर्मदा का नरम कंकर स्फुट छत्तीस रचनाओं का संग्रह है, जिसका प्रथम संस्करण सन् १९८० में अमरावती (महाराष्ट्र) से प्रकाशित हुआ था। एक बार डॉ० नेमिचन्द जैन (सम्पादक-तीर्थंकर मासिक) इंदौर, आचार्यश्री के दर्शनार्थ आये और उनसे निवेदन किया कि यदि आप मुक्तक-छन्द में काव्य का प्रणयन करें तो नूतन विधा में भी आपकी कृतियाँ पाठकों को प्राप्त हो जायेंगी तथा जो स्वयमेव ही स्तुत्य स्थान प्राप्त कर सकेंगी। परिणामस्वरूप आचार्यश्री के शब्दों में आत्मतत्त्व से भावों, भावों से शब्दों एवं शब्दों से भाषा का रूप मिलकर इसका सम्पादन हुआ। वे स्वयं इस संग्रह के प्रारम्भ में ‘अमिताक्षर’ के अन्तर्गत इसका चरम लक्ष्य बतलाते हैं-

“यह कृति जो आधुनिक शब्द विन्यासों, विविध भावाभिव्यंजनाओं एवं छंदबंध-मुक्त, उन्मुक्त लय-धाराओं से आकृत है, व्यक्तित्व की सत्ता को नहीं छूती हुई, सहज स्वतंत्र महासत्ता से आलिंगित परम पदार्थ की प्ररूपिका है, परम शास्त्र अध्यात्म रस से आद्योपान्त आपूरित।”

“यद्यपि अध्यात्म पिपासु, साक्षर यह युग है, तथापि सही दिशाबोध के अभाव में साधन में ही साध्य संवेदना की परिकल्पना कर बैठा है। उसे यह विदित नहीं है कि ज्ञेय में सुख निहित नहीं है, वह ज्ञान की भीतरी अनी से फूटता है। ज्ञाता का ध्येय ध्रुव, ज्ञेय नहीं है किन्तु ज्ञान-केवलज्ञान! द्रष्टा का केन्द्रबिन्दु दृश्य नहीं है, परन्तु दर्शन-केवलदर्शन हो वह भी ज्ञान एवं दर्शन, अपना और पराया इस स्वामीपन की बुरी दुर्गन्ध से मुक्त सामान्य! अतः अक्षर से अक्षरातीत, क्षरातीत, अन्तरहित, अक्षर-अनन्त परम पूत आत्मा को अनुभूत करना ही इस कृति का चरम ध्येय है।”

इससे स्पष्ट है कि इस संग्रह की कविताओं में शब्द-विन्यास आधुनिक शैली पर है, भावव्यञ्जनाएँ विविध प्रकार हैं तथा वे छन्दबद्ध न होकर मुक्त

हैं; किन्तु लयवती हैं। ये व्यक्ति विशेष के धरातल से उद्‌गत हो परम सत्ता को स्पर्श करती हैं, अतएव अध्यात्मनिष्ठ होने से शान्तरस से आपूरित हैं। आज का शिक्षित व्यक्ति इस बात से निपट अनभिज्ञ है कि सुख ज्ञेय पदार्थों में नहीं, आत्मज्ञान में है, जिसका अन्तिम लक्ष्य है केवलज्ञान एवं केवलदर्शन की उपलब्धि अर्थात् 'स्व' की चरम विशुद्धावस्था को प्राप्त करना।

इस संग्रह का नामकरण बारहवें स्थान पर संग्रहित कविता 'नर्मदा का नरम कंकर' के आधार पर हुआ है। नर्मदा मध्यभारत की प्रमुख पवित्र नदी है, जो क्वाँरी कहलाती है। इसमें नरम संगमरमरी चट्टानें हैं, जिनके टुकड़े होकर कंकर बन गये हैं। आचार्य विद्यासागरजी महाराज स्वयं को संसाररूप नर्मदा नदी का एक अकिंचन/कंकर मानते हुए शंकररूप तीर्थंकर आदिनाथ से अथवा शान्तिकर तीर्थंकर महावीर से प्रार्थना करते हैं–

युगों युगों से /जीवन विनाशक सामग्री से
संघर्ष करता हुआ
अपने में निहित / विकास की पूर्ण क्षमता संजोये
अनन्त गुणों का / संरक्षण करता हुआ / आया हूँ
किन्तु आज तक / अशुद्धता का विनाश / ह्रास
शुद्धता का विकास / प्रकाश
केवल अनुमान का / विषय रहा....विश्वास
विचार साकार कहाँ हुए? / बस /...अब निवेदन है / कि
या तो इस कंकर को / फोड़ फोड़ कर /
पल भर में कण कण कर
शून्य में / उछाल / समाप्त कर दो
अन्यथा / इसे / सुन्दर सुडौल / शंकर का रूप प्रदान कर
अविलम्ब...इसमें / अनन्त गुणों की /
प्राण-प्रतिष्ठा कर दो।

संसारी जीव अनादिकाल से आत्मविकास की पूर्ण क्षमता रखता हुआ भी अनन्त गुणों का संरक्षण करता एवं विभावों से संघर्ष करता हुआ जन्मता-मरता चला आ रहा है, किन्तु अभी तक न अशुद्धता का ह्रास और

शुद्धता का प्रकाश कर सका है। अतः गुरु ज्ञान के निमित्त से संयोगवश कभी वह इस स्थिति से उद्धृत होना चाहता है तो ईश्वर से प्रार्थना करता है। यही मानसिक स्थिति हमारे भक्त सन्त कवि की है, वह निराश होकर कहता है कि हे शंकर प्रभो! या तो इस किंकर-कंकर को तिल तिल कर शून्य में समाप्त कर दो अन्यथा अपना जैसा रूप देकर इसमें अनन्त गुणों की प्राण-प्रतिष्ठा कर दो।

ग्रन्थ का आरम्भ 'वचन सुमन' कविता से होता है, जिसमें महाकवि महाप्राण भगवान् के चरणों में वचन-सुमन अर्पित करता हुआ कहता है, कि नाथ! प्राण प्रयाण की ओर है, मैं अब तक प्रतिकूल प्रकृति से संघर्ष करता आया हूँ किन्तु अनुकूल प्रकृति से प्राण-विटप को सींचा भी है, अब हताश हूँ, मैं चाहता हूँ कि आप जैसा होने के लिए मेरा सदुपयोग हो, मेरी यह प्रार्थना स्वीकृत हो, मैं आपकी चरणशरण हूँ। मेरी आत्मा ने निज अनन्त गुणों के बोध से वंचित होकर दुःख में निमग्न हो अनन्तकाल व्यतीत कर दिया, मैंने न तो विषय-राग को हटाया और न वीतराग को ध्याया। हे परमहंस! मेरा निवेदन आपको स्वीकार करना ही पड़ेगा। आपके श्रीपाद सुखद निरापद हैं, अन्यथा मेरा मानस-हंस आनन्द की अपरिमित लहरों में तैरता हुआ गजमुक्ताओं को भी अपनी मंजुल कान्ति से पराजित करती हुई तथा शशि-सित-धवल नख-पंक्तियों के मिष मौक्तिक मणियों को चुगने के लिए क्यों तत्पर हैं? हे प्रभो! उत्तर दो।

'भगवद् भक्त' चेतना के आकाश में विशुद्ध परिणामों के पंख लगा कर अर्क रुई के समान लघुतम हुआ उड़ता-उड़ता उस स्थान पर पहुँच जाता है, जहाँ वासना-व्याप्त वसुन्धरा का गुरुत्वाकर्षण अपनी ओर आकृष्ट नहीं करता वरन् स्वतंत्रता के दिव्य तेजोमय आभामंडल में अपने को घिरा हुआ पाता है-

पंख के बल पर / और लघुतम हुआ / अर्कतूल
ऊपर उड़ता हुआ / उड़ता हुआ / अपरिचित ऊँचाइयाँ
लाँघता...लाँघता हुआ / वहाँ पहुँच गया हूँ

विषय वासना व्याप्त / धरती का गुरुत्वाकर्षण
नहीं करता आकर्षित / हर्षित तर्षित
...किन्तु... चेतना के विशाल / विस्तृत
निरभ्र आकाश मंडल में / ...अपने को पाया
घिरा हुआ / स्वतंत्रता के दिव्य तेजोमय
आभामंडल में।

हमारे महाकवि की भी यही स्थिति है। उन्हें ऐसा भासित हो रहा है कि इस संसार सागर में आशा और उत्साह का अवलम्बन कर वे एकाकी यात्रा कर रहे हैं, कभी राग-रंगिनी तरल तरंगें उलझनें डालती हैं, तो कभी मिथ्यात्व मगरमच्छ उनके चरण पकड़ कर साधना की ऊँचाई से गिराना चाहते हैं और कभी विभाव रूप पर्वतीय हिमानी चट्टानें साहस को चूर-चूर करती हैं, तथापि वे भय से कम्पायमान नहीं होते और ओंकार की ध्वनि में लीन रहना चाहते हैं।

महाकवि ने '**एक और भूल**' कविता में साधक के भाव-विभाव सम्बन्धी संघर्ष को इतनी सुन्दरता, उदात्तता और विशुद्धता के साथ चित्रित किया है कि इसकी समता साहित्य में दुर्लभ है। जीव भूलवश मृदुल लाल उत्फुल्ल गुलाब फूल से भी अधिक उत्फुल्ल मोह में निमग्न है, जिससे चेतना की निगूढ़ सत्ता में मायाविनी सत्ता समा गई है, किन्तु एक समय आता है, जब उपयोग की सत्ता उभरती है, पुनः बौद्धिक विकल्पजाल उसे दबाना चाहता है, किन्तु इसी समय ध्यानाग्नि बलवती होती है, जो उपयोग की सत्ता को तपाने लगती है, इस घाताघात में माया की सत्ता ज्वरसूचक यंत्रगत पारद रेखा के समान ऊपर यौगिक परिधि में जाने लगती है, तभी साधक योग से उसका निग्रह करता है, जिससे वह जलकर ऊपर उत्तमांग से बाहर पलायन कर जाती है, ये सिर पर केश दग्ध कुटिल माया ही तो हैं। मुमुक्षु के अन्तरंग की विशुद्धीकरण-प्रक्रिया का यह अंकन अभूतपूर्व है।

मन अति चंचल है, '**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः**' के अनुसार यह ही बन्ध और मोक्ष का कारण है, क्योंकि रागद्वेष-मोहादि में लीन होकर यह बन्ध का कारण होता है और यदि इसकी दिशा अन्तर्मुख

हो जाए, स्व की ओर मुड़ जाए तो मुक्ति का साधन बन जाता है। मुनि का मन भी यदि चञ्चल हो तो वह पर-निन्दा और आत्मप्रशंसा में आनन्द लेता है, स्वयं को शुद्ध-बुद्ध कहता हुआ (मनमाना मन) भी तनिक सी बात पर क्रुद्ध हो जाता है। यहाँ एक अत्यन्त मनोहारी प्रसंग से यह बतलाया गया है कि ऐसा साधु भ्रामरी चर्या से भी कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करता। गन्धानुरागिन अनगिन नागिनों से वेष्टित चन्दन पादपों से संकुल मलयाचल से प्रवहमान पवन से संदेश पाकर एक भ्रमर-दल वन में ध्यानमग्न मुनि के चरणारविन्द का दर्शन करने चला, किन्तु ज्यों ही उसने चरणनखों में अपनी कालिम आकृति को देखा तो ग्लानि से भर गया और तब से उसने एक स्थान पर अधिक न ठहरने की चर्या अपनाई, यही भ्रामरी चर्या है। ऐसे स्वादुओं के निमित्त कवि की शुभ कामना है-

ज्ञानभानु का उदय हो / विभ्रमतम का विलय हो।
इन्द्रिय दल का दमन करें / मोह मान का वमन करें
कषाय गण का शमन करें / शिव पथ पर सब गमन करें।

जैन लोग दीपावली के दिन भगवान् महावीर की निर्वाण-स्मृति में दीप-मालिका प्रज्ज्वलित करते हैं और प्रातः मन्दिर में जाकर उनकी प्रतिमा के समक्ष मोदक समर्पित करते हैं, परन्तु क्या उनके 'मानस-दर्पण में' कोई प्रकाश की झलक पड़ी? अच्छा हो यदि वे तम-रजोगुणों का त्याग कर सतोगुण को धारण करें।मन जब चेतना के धरातल पर पहुँच जाता है, तो स्वयं ही समर्पण की भावना जागृत हो जाती है और महासत्ता का रूप लेना चाहती है। किन्तु कभी समय ऐसा भी आता है जब भक्त दिगम्बर मुनि के चरणों में प्रणिपात कर महासत्ता से सायुज्य करना चाहता है तो प्रतिसत्ता अकारण उसमें व्यवधान उत्पन्न करती है और वह मौन रह जाता है।

इस प्रसंग में आचार्यजी को स्वीय बालयति-जीवन स्मृत हो जाता है कि दीक्षा के उपरान्त मैंने जब गुरुचरणों में ज्ञानार्जन हेतु पूर्ण समर्पण कर दिया तो गुरु ने समर्पण के द्वार से ही ग्रन्थराज समयसार का चिन्तन, मनन और अध्ययन कराया, जिसके फलस्वरूप मुझे प्रत्येक गाथा में अमृत ही अमृत भरा मिला और मैं पीता गया, उसे इतना छककर पिया कि मुझे

आत्मानुभूति के अतिरिक्त कुछ भी अनुभव न रहा। यहाँ तक कि समयसार ग्रन्थ भी परिग्रह-सा प्रतीत हुआ। मुझे ऐसा भान हुआ कि मैं समयसार से भी ऊपर सिद्धालय पहुँच गया हूँ, जहाँ अविद्या-विद्या, ध्यान-ध्येय, ज्ञान-ज्ञेय, भेदाभेद और खेदाखेद से परे महासत्ता विद्यमान है, जो स्वयं में समर्पित है–

आश्चर्य यह हैं कि / जिस विद्या की चिरकालीन
प्रतीक्षा थी...
उस विद्यासागर के भी पार... / बहुत दूर... / दुरातिदूर...
पहुँच गया हूँ
अविद्या-विद्या से परे / ध्यान-ध्येय /ज्ञान-ज्ञेय से परे
भेदाभेद / खेदाखेद से परे / उसका साक्षी बनकर
उद्ग्रीव उपस्थित हूँ / अकम्प निश्चल शैल
चारों ओर छाई हैं / सत्ता / महासता
सब समर्पित, अर्पित / स्वयं अपन में।

यह समयसार दो प्रकार का है-एक जीवित, द्वितीय सिद्धगत। जीवित समयसार का चित्रण रहस्यमय होता हुआ भी इतना मनोरम बन पड़ा है कि आत्मविकास की प्रक्रिया को साकार बना दिया है। आचार्यश्री का स्वानुभव इस प्रकार है कि विशुद्ध परिणामों से जब दधि-दुग्ध-धवलित निर्जरा का निर्झर झरता है, तो जीव मौनभाव से ऊर्ध्वमन करता हुआ उपास्य में पूर्णतः समर्पित हो जाता है, जिससे एक ऐसा अद्भुत परिणमन होता है कि विविध-गुणों के सुमन विलास करने लगते हैं और उन गुणों की मकरन्द लिए परिणमन-पवन संपूर्ण चेतना-मण्डल में प्रसरित हो जाता है, यही चिदानन्दमयी नन्दन है, जहाँ न कोई बन्धक है, न बन्धन; न कोई क्रन्दक है, न क्रन्दन; न कोई वन्दक है, न वन्दन; जहाँ केवल चेतना का महा विस्तार है, जो नागेन्द्र, देवेन्द्र, नरेन्द्र, विषयदास, क्रियाकाण्ड में व्यस्त साधु-संन्यासियों से अपरिचित है; वहाँ जीव केवल आलोक, आनन्द और स्वभाव में मग्न होता है। यही है–

साकार / चेतनाकार
सब सारों का सार / जीवित समयसार!

इनके अतिरिक्त इस काव्य में अध्यात्म के अनेक गम्भीर पक्ष अंकित हैं। 'विभाव-अभाव' कविता में इन दोनों का अन्तर बतलाया गया है, 'हे निरभिमान' में प्रभु की ध्यानावस्था का चित्रण है, 'दीन नयन ना' में कामना है कि नेत्रों में हीन भाव न हो, 'राजसी स्पर्शा' में कहा गया है कि यथार्थ में चेतना का स्पर्श ही राजसी स्पर्शा है, 'ओ नासा' कविता में भी वास्तविक आत्मा की गन्ध की ओर संकेत है और 'हुआ है...जागरण' में जागरण से तात्पर्य आत्मज्ञान है।

यह काव्य नन्दनवन है, जिसमें एक ही ऋतु है, किन्तु विविध विटप हैं, सुस्वादु फल हैं, रंग-बिरंगे सुमन हैं और है उदात्त आनन्द का वातावरण। इसकी कविताएँ न केवल अध्यात्म की दृष्टि से वरन् काव्य-गुणों की दृष्टि से भी अभूतपूर्व हैं, अश्रुत-पूर्व हैं। मानस हंस, अपने में...एक बार, भगवद् भक्त, एक और भूल, शेष रहा चर्चन, नर्मदा का नरम कंकर, प्रभु मेरे में-मैं मौन, समर्पण द्वार पर, जीवित समयसार, वंशीधर को, आकार में निराकार, डूबा मन रसना में और ओ नासा कविताएँ अमर कविताएँ हैं। इनमें मनोरम पद-विन्यास, ललित प्रसाद गुण, भावों की उद्गत प्रवहमान तरंगें और अनुपम हिल्लोल कर आलंकारिक छटा कहती हैं, कि धन्य है यह कवि, जिसकी लेखनी से ये निःसृत हुई हैं और प्रश्न करती हैं कि क्या भविष्य में इस ऊँचाई को कोई माप सकेगा?

इस संग्रह में इतना लालित्य है कि यदि मैं यह कहूँ कि आचार्य श्री के मुक्त काव्य-संग्रहों में यह संग्रह सर्वश्रेष्ठ है तथा श्रेष्ठातिश्रेष्ठ कवियों की वाणी भी इन कविताओं से ईर्ष्या करेगी तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसमें अनेक स्थलों पर इतनी मनोहारी पदावलि का प्रयोग हुआ है कि पढ़ते-पढ़ते हृदय वल्लियों उछलने लगता है और धन्य-धन्य की ध्वनि सहसा निकल पड़ती है।

❑ ❑ ❑

अनुक्रम

वचन सुमन

हे महाज्ञान!
महाप्राण!
एकमेव...
मेरे त्राण...
प्राण प्रयाण की ओर...
प्रतिकूल प्रकृति से
सुरक्षित कर
प्रकृति अनुकूल
उजल-उजल
शीतल-सलिल
सिंचन क्रिया
प्राण-द्रुम मूल में
आमूल-चूल
विगत-अनागत
भूल...
जैसे फूले
फूल...

कृतज्ञता की अभिव्यक्ति
भावाभिव्यक्ति
कर लूँ उपयोग
जो मिली है
प्रसाद शक्ति
होने तुम सा!...
अमन!
वचन सुमन
स्वीकार हो!
हे परम शरण!
....समवसरण!
चरम चरण!
....अंतिम....चरण!

❑ ❑ ❑

हे आत्मन्!

अपने सहज शुद्ध
अनंत धर्मों
.............गुणों के
यथार्थ बोध से
..........वंचित हो
युगों-युगों से
बिना सुख शांति आनंद
व्यतीत किया है

.......अनन्त काल !
यह संसार सकल
त्रस्त है
पीड़ित है
आकुल विकल
......कारण ?
और है इसमें

हृदय से कहाँ हटाया
विषय राग को
हृदय में कहाँ बिठाया
.....वीतराग को
जो है
संसार भर में केवल
परम शरण...
......तारण तरण!

❑ ❑ ❑

मानस हंस

आप
असम्मति प्रकट कर नहीं सकते
यह मेरा निर्णय
स्वीकार करना पड़ेगा आपको
कि
आपका श्रीपाद
सुखद निरापद
अगाध! मानस
आनन्द की अपरिमेय लहरों से
लहरा रहा है
अन्यथा
तट पर तैरती हुई
गज-मुक्ता को भी
पराजित करती हुई
अपनी अनुपम अनन्य
मृदु मंजु कान्ति से
छविमय शुचिमय
शशि-सित-धवला
औ' नखपक्तियों के मिष
मौक्तिक मणियाँ
चुन-चुन चुगने
क्यों तत्पर है...!
.....मंद मंद
हँसता हँसता
यह मम मानस हंस!...
सब हंसों के
सब अंशों के
अंश अंश के
पूरक अंश!
हे परम हंस!
हे अनुत्तर...
.......उत्तर दो!

❑ ❑ ❑

अपने में ...एक बार

तम टला
चला उडुदल
हो चली
प्राची अरुणिमा,
चला
मंद मंद सगंध पवन
पवन की इच्छा है
अच्छा होगा!
होगा स्वच्छ मम जीवन भी
एक बार सहर्ष
वीर चरण स्पर्श
कर लूँ! अंतिम दर्श
न जाने अनागत जीवन...!
क्या विश्वास ?
आया.... न आया.... श्वास
लता, लता के चूल पर
फूले....फूल दल
फूले न समाते
स्वयं वीर चरणों में
करते समर्पण
स्मित-सुमन!...
सन्मति के पद-पयोज पर
पयोज-पराग-लोलुपी
भव्य अलिगण
खुल खिल गुन गुन गुंजार
नाच नाचते
मन ही मन

एक अपूर्व आस्था!...
मानो कहते
हम अमर बनेंगे/नहीं मरेंगे
जो किया सुधा-सेवन
अपूर्व संवेदन
अनिमेष निरखती
जो धरती
युगवीर को/धीर को/गुणगंभीर को
धन्यतमा मानती
स्वयं को
तृण बिन्दुओं के मिष से
दृग बिन्दुओं से
इंदु समान महावीर के
कर पाद-प्रक्षालन!
पावा उद्यान
आरूढ़ हो ध्यान यान
किया वर्द्धमान ने
निज धाम की ओर...
....महाप्रयाण!
हे वीर!
हो स्वीकार
मम नमस्कार
बने साकार
जो उठते
बार-बार विचार
मम मानस तल पर!...

❑ ❑ ❑

भगवद्-भक्त

सराग पथ का वर्धक
साधक !
विराग पथ का
बाधक !

निस्सार...
निष्प्रयोजन!
जान/मान
अनुभव कर
जात-पात से
पक्षपात से
ऊपर उठा हुआ
मैं...

भगवद् भक्त!
मेरे साथ
केवल गात

मुझे मिले
भाव भक्तिमय
सबल धवल

दो पंख!
पंख के बल पर
और लघुतम हुआ...
......अर्कतूल!
ऊपर उड़ता हुआ....उड़ता हुआ
....अपरिचित ऊँचाईयाँ
लाँघता....लाँघता हुआ
वहाँ पहुँच गया हूँ

विषय वासना व्याप्त
धरती का गुरुत्वाकर्षण
नहीं करता आकर्षित
हर्षित, तर्षित

....किन्तु यह कैसा
अद्‌भुत! अदम्य! चुम्बकीय!
परम गुरु का आकर्षण
................गुरुत्वाकर्षण!

प्रयत्न/प्रयास
आवश्यक नहीं
सब कुछ सहज/सरल
.....स्वतंत्र
और
मैं तैर रहा हूँ...

....चेतना के विशाल/विस्तृत
निरभ्र आकाश मण्डल में
नयन-मनोहर
विहंगम दृश्य का

अनिमेष
अवलोकन करता हुआ
अपने को पाया
घिरा हुआ....
स्वतंत्रता के दिव्य तेजोमय!
आभा-मण्डल में...
विदित हुआ है
कि
शुद्ध किन्तु सहज क्रिया का
यह सूत्रपात है
यथाजात है
यही सचमुच
रहा सब कुछ
मात, तात है
तभी एक साथ
हो भू-सात्
तीनों करण
मन वचन तन...
सानन्द सादर
किया प्रणिपात है
फलस्वरूप
विशाल भाल पर
चरणरज कुन्दन कुंकुम
अंकित हुआ है
लग रहा है
तृतीय नेत्र उग रहा है

सारा तिमिर

....भग रहा है

सोया जीवन

....जग रहा है....जग रहा है....जग रहा है

कि

जिससे फूटती हुई

प्रचंड ज्वालामुखी सी

त्रिकोणी लपटों में

आगामी अनंत काल के लिए

काल काम त्रस्त हो रहे हैं शनैः शनैः

पूर्ण ध्वस्त हो रहे हैं

एकमेव!

देवाधिदेव!

जय महादेव

शेष... ...

❑ ❑ ❑
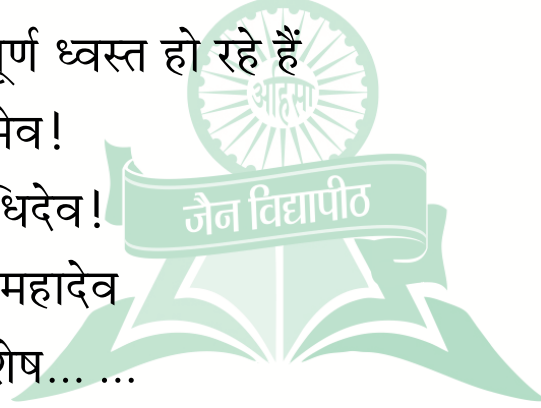
एकाकी यात्री

हे आशातीत!
    अपार/अपरम्पार
    आशारूपी
    महासागर का
    पार/किनार
कैसा पा लिया ?
आपने!
जिसका अवगाह
पाताल से संबंधित
    जिसके तट!...
    अनंत से चुंबित
    विषमतामय विषय
    क्षार जल से भरपूर
जिसको पार करते
अतीत में...
बार-बार...
....कई बार
हार कर
डूब चुका हूँ...
    फिर भी

अब की बार
उस पार
पहुँचने का
पूरा विश्वास
मन में धार
यद्यपि शारीरिक पक्ष
अत्यन्त शिथिल
दौर्बल्य का अनुभव!...
केवल
आत्मीय पक्ष!
निष्पक्ष
सलक्ष्य
अक्ष-विषय से ऊपर उठा हुआ
आपको बना साक्ष्य
आदर्श प्रत्यक्ष
अपने कार्य क्षेत्र में
पूर्ण दक्ष!
साक्षी बने हैं
साहस उत्साह
और अपने
दुर्बल बाहुओं से
निरंतर तैर रहा हूँ...
एकाकी यात्री...
अबाधित यात्रा कर रहा हूँ

अपार का पार पाने

बीच-बीच में

इन्द्रिय विषयमय

राग रंगिनी

तरल तरंगमाल

मुझ बाल के गले में

आ उलझती हैं

पर! क्षणिका मिटती है

यह! उलझता नहीं

उस उलझन में

कभी

मिथ्यात्व मगरमच्छ

नीचे की गहराई में से आ

अविरल साधनारत मेरे

पैर पकड़ कर

नीचे ले जाने का साहस

प्रयास भर करता है

किन्तु....असफल

कभी

विपरीत दिशा की ओर

तीव्रगति से

यात्रा करने वाली

कषाय हिमालय की

हिमानी चट्टानें

मेरी हिम्मत चुराने की
मुझे चूर-चूर करने की
हिम्मत करती हैं
किन्तु उनसे बच
सुरक्षित निकलता हूँ
आगे आगे
भागे भागे
इन सभी अनुकूल-प्रतिकूल
स्थितियों में से
गुजरता हुआ भी
आत्मा में
नैराश्य की भावना
संभावना भी नहीं

तथापि
ऐसे ही कुछ
पूर्व संस्कार के
मादक बीज
आये हों बोने में
धूल धूसरित
आत्म सत्ता के
किसी कोने में
अंकुरित हो न जायें...
....उनकी जड़ें
और गहराई में
....उतर न जायें...
ऐसा

विभाव भाव भर
उभर आता है
कभी–कभी...
....बाल भक्त के
भावुक भावित
मानस तल पर...

फलस्वरूप
नहीं के बराबर
भीति का संवेदन
करता है कम्पायमान
मेरा मन
गुमराह!...
अरे....अब तक
कहाँ तक आया हूँ
यह भी विदित नहीं
हे दिशा–सूचक यंत्र!...
दिशा–बोध तो दो
पारदर्शन नहीं हो रहा है
अभी कितनी दूर...!
....इतनी दूर....वो रहा...!
ऐसी ध्वनि ओंकार!
कम से कम
प्रेषित कर दो
इन कानों तक
हे मेरे स्वामी!
अपार पारगामी!

❑ ❑ ❑

एक और भूल

अपनी ही भूल

चल-चल चाल

प्रतिकूल

विषय-विलासता में

लीन विलीन

झूला-झूल

दिन रात...

क्षणिक नश्वरशील

संवेदित सुखाभास से

मृदुल लाल उत्फुल्ल

गुलाब फूल से भी

अधिक फूल

मोहभूत के

वशीभूत हो

भूत सदृश

भूतार्थ मूल

भूत में
दु:ख वेदना/यातना
निरंतर अनुभव किया...
प्रभूत !...
आपने भी
जब यह गूढ़तम रहस्य
तप:पूत गुरुओं की
सुखदायिनी
दु:खहारिणी
वाणी
सुनकर
प्रशस्त मन से !...
विदित हुआ
आपको
कि
अपनी चेतना की
निगूढ़ सत्ता में
मायाविनी सत्ता
बलवत्ता से आकर
प्रविष्ट हुई है
अदृष्ट !...
दृष्टि अगोचर !
कृत-संकल्प
हुए आप
नहीं विलंब स्वल्प भी

अविलम्ब...!
अल्पकाल में ही
कल्पकाल से आगत का
बहिष्कार आवश्यक
काल ने करवट लिया अब
वह काल नहीं रहा
स्वागत का
रहा केवल स्वारथ का
उतर गया...
माया की गवेषणा को
गवेषक
....बेशक
उपयोग की केन्द्रीय सत्ता पर
सत्ता के कोन-कोन
बौद्धिक आयाम से
अविराम....!
चिंतन की रोशनी में
छन गये
पर...
....पर क्या ?
माया की सत्ता का
पता ?
....लापता...
उसी बीच
गवेषक की बुद्धि में

सहज बिना कसरत
एक युक्ति
झलक आयी
कि
उपयोग की समग्र सत्ता को
जला दिया जाय!
....तो
....निश्चित...!
अनंत लपटों से
धू धू करती
धधकती
परम ध्यानमय
निर्धूम अग्नि से
उपयोग की विशाल सत्ता
तपने लगी
जलने लगी
तभी
गहराई में गुप्त/लुप्त/सुप्त
माया की सत्ता
ज्वर-सूचक यंत्रगत
पारद रेखा सम!
उपयोग केन्द्र से
यौगिक परिधि में
मन-वचन-तन के वितान में
चढ़ती फैलती देख

पुरुष ने
योग-निग्रह
संकोच किया
सूक्ष्मीकरण
विधान से
उपयोग योग से
बहिर्भूत/स्थूलकाय में
उसे ला, जलाना प्रारम्भ किया
फलस्वरूप
वह पूर्ण काली होकर
बाहर आकर
विपुल/जटिल/कुटिल
आपके उत्तमांग में उगे
बालों के बहाने
अपने स्वरूप
कुटिलाई का परिचय
देती हुई वह माया
जड़ की जाया
छाया...!
हे निरामय!
हे अमाय!

❑ ❑ ❑

मनमाना मन

माना
मानता नहीं मन
मनाने पर भी
मनमाना
करता है माँग
मना करने पर भी
फिर भी
विषयों की ओर...!
बार-बार
गतिमान/धावमान
स्वयं बना है
नादान
हिताहित के विषय में
स्व-पर बोध
नहीं रखता
.....अनजान!
इसकी इस
स्वच्छन्दता
उच्छृंखलता
देख जान
होंगे आप
पीड़ित परेशान

और इसे
नियंत्रित सेवक बनाने
अथवा पूर्ण मिटाने
षड्यंत्र की योजना में
इसी की सहायता से
होंगे सतत
प्रयत्नवान
फिर भी आप
जानते मानते
अपने आप को
धीमान सुजान!
इससे मैं
विस्मितवान!
मन को मत छेड़ो
बिना मतलब
उसे
मत मारो, छोड़ो
सँभालो/सुधारो
दया द्रवीभूत
कण्ठ से
विनय भरे
हित-मित-मिष्ट
वचनों से
वह नादान
नादानी तज
बने मतिमान

सही सही समितिमान
मोक्ष-पथ का पथिक
गतिमान औ प्रगतिमान

बिना मन
चढ़ नहीं सकता
मोक्ष-महल का
वह सोपान
यह असुमान!

बिना मन
हो नहीं सकता...
वह अनुमान
केवलज्ञान!
पूर्ण प्रमाण!

बिना मन
हो नहीं सकता
मोक्ष महल का
आविर्माण
नवनिर्माण!
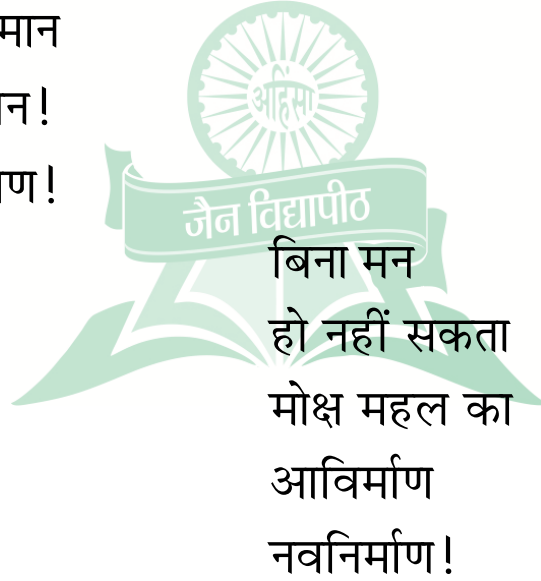
तनिक हो सावधान
उस ओर दो
तनिक ध्यान
कि
मन का मत करो
उतना शोषण!

मत करो मन का
उतना पोषण!

पोषण से
प्रमाद पवमान
अप्रमादवान
प्रवहमान

तब बुझता है आत्मा का
शिव पथ सहायक
वह रोशन!

मन का शोषण
उल्टा तनाव
उत्पन्न करता है

तनाव का प्रभाव
उदित हो निश्चित
विभाव/विकार भाव

फलतः
जीवन प्रवाह...!
विपरीत दिशा की ओर...!
होता प्रवाहित
भरता आह...!

श्राव्य/श्रुति मधुर
स्वर लहरी
लय ध्वनियाँ
सुनना है यदि
वीणा का तार

इतना मत कसो
कि
टूट जाय...

संगीत संवेदना की धार
छूट जाय...

और...
इतना ढीला भी नहीं
कि
अनपेक्षित रस विहीन
स्वर लयों का झरना
फूट जाय...

माना
मन करता
अभिमान
चाहता है गुरुओं से भी
उच्च उत्तुंग स्थान

चाहता अपना
सम्मान/मान
सदा सर्वथा
तीन लोक से
पद-प्रणाम
पूजा नाम

तथापि उसे समझाना है
स्वभाव की ओर लाना है

क्योंकि उसे
अज्ञात है
गुणगण खान
अव्यय द्रव्य
भव्य दिव्य...

ज्ञात है केवल
पर प्रभावित
वह पर्याय

यदि उसमें जागृत हो
स्वाभिमान
तभी बनेगा
वही बनेगा
निरभिमान

मानापमान
समझ समान

फिर...
.....फिर क्या!

आरूढ़ हो ध्यान यान
पल भर में
प्रयाण...

जिस ओर ओ...
.....है निज धाम
.....है निर्वाण...!

वही मन
भावित मन
करे स्वीकार

मेरे इन
शत-शत प्रणाम!
शत-शत नमन!

❑ ❑ ❑

शेष रहा चर्चन

अविचल
मलयाचल-गत
परम सुगंधित
नंदन-वंदित
आतप-वारक
चंदन-पादप

जिनसे
लिपटी/चिपटी
पूँछ के बल पर
वदन घुमाती
उड़न चाल से
चलने वाली
चारों ओर
मोर शोर भी
ना गिन

गंधानुरागिन
अनगिन
नागिन!
स्वस्थ समाधिरत
योगिन सी...
पर...

उन्हीं घाटियाँ
पार कर रहा
मन्द/मन्दतम
चाल चल रहा
अनिल अविरल अहा!

श्रान्त क्लान्त है
शान्ति की नितान्त
प्यास लगी है उसको
आत्म प्रान्त में

तड़फड़ाहट
अकस्मात् !...
भाग्योदय !...
दयनीय हृदय
अपूर्व संवेदन से
गद्गद हुआ
हुआ पीड़ा का
विलय प्रलय

आपके
अपाप के
मुक्त परिताप के
चरणारविन्द का

जिससे पराग झर रही
मृदुल संस्पर्श पाकर...
पराग भरपूर पीकर...
निस्संग बहता बहता
वह!...

सर्वप्रथम
अपने साथी
भ्रमर दल को
सारा वृत्तान्त
सुनाया जाकर...

संवेदित अपूर्व
पराग दिखाकर
आपके प्रति राग जगाया
सादर...

भीतर औ बाहर...
धन्यवाद कह
.....बाद वह
अलिदल
उड़ पड़ा
सहचर सूचित
दिशा की ओर...

वायुयान-गति से
प्रतिमुहूर्त
सौ-सौ योजन
बनाकर केवल
........प्रयोजन
रसमय अपना
........भोजन

सुनो फिर तुम
क्या हुआ भो! जन!
किया प्रथम बार

दर्शन सार
परमोत्तम का
पुरुषोत्तम का

रत्नत्रय प्रतीक
तीन प्रदक्षिणा
..... दे कर...

पुनीत/पावन
पाद पद्म में
प्रमुदित प्रणिपात

नतमाथ
तभी तैर कर आया
विगत आगत का
जीवन प्रतिबिम्ब
स्वच्छ/शुद्ध
विजित-दर्पणा
प्रभु की
विमल-नखावली में

अलिदल-दिल
हिल गया
पिघल गया
जो किया है
कर्म ने वही
अब दिया है
फल/प्रतिफल पल पल

अपना आनन
अपना जीवन
सघन तिमिरसम

कालिख व्याप्त
लख कर
मानो विचार कर रहा
मन में
कि
पर पदार्थ का ग्रहण
पाप है

.....किन्तु
महापाप है
महाताप है
करना पर का संचय...
संग्रह...

इस सिद्धांत का
परिचायक है

मेरा यह
तामसता का एकीकरण
संग्रह!...

विग्रह मूल, विग्रह!...
तभी से वह
भ्रमर–दल
चरण कमल का केवल
करता अवलोकन

पल भर बस!...
छूता है
विषयानुराग से नहीं
धर्मानुरागवश!...

गुन-गुनाता
कहता जाता
भ्रामरी चर्या
अपनाओ!...

शेष रहा
ना अपना ओ...
सपना ओ...

आश्चर्य!
प्रथम बार दर्शन
जीवन का कायाकल्प

अल्प काल में
अनल्प परिवर्तन
....क्रांति!
संतोष संयम शांति

धन्य!
किन्तु खेद है!
नियमित प्रतिदिन
आपका दर्शन/वंदन
पूजन/अर्चन
तात्त्विक चर्चन
समयसार का.... मनन!

फिर भी
तृण सम
जिन का तन जीर्ण शीर्ण
इन्द्रिय-गण में
शैथिल्य

विषय रसिकों में
प्रथम श्रेणी उत्तीर्ण
जिन का तामस मन!...
आर्थिक चिंताओं से
.....आकीर्ण
जिनका रहता भाल

साधर्मी को लखकर
करते लोचन लाल
चलते अनुचित चाल

आत्म-प्रशंसा सुनकर
जिन के खिलते गाल

धर्म कर्म सब तजते
जहाँ न गलती अपनी दाल!

रटते रहते
हम सिद्ध हैं
हम बुद्ध हैं
परिशुद्ध हैं

तनिक दाल में/नमक कम हो
झट से होते क्रुद्ध हैं

कहते जाते
जीव भिन्न है
देह भिन्न है
मात्र जीव से
दर्शन ज्ञान अभिन्न

तनिक सी....प्रतिकूलता में....
होते खेद खिन्न!

यह कैसा...
.....विरोधाभास ?

विदित होता है
भ्रमर का प्रभाव भी
इन भ्रमितों पर
पड़ा नहीं

हे! प्रभो!
प्रार्थना है
कि
इनमें
ज्ञान भानु का उदय हो

विभ्रम तम का विलय हो
इन्द्रिय-दल का दमन करें
मोह मान का वमन करें
कषाय गण का शमन करें
शिव पथ पर सब गमन करें

बनकर साथी
मेरे साथ
दो आशीष
.....मेरे नाथ!!

❑ ❑ ❑

मानस दर्पण में

मिट्टी की दीपमालिका
जलाते बालक-बालिका
आलोक के लिए
ज्ञात से अज्ञात के लिए
किन्तु अज्ञात का/अननुभूत का/अदृष्ट का
नहीं हुआ संवेदन/अवलोकन

वे सजल-लोचन
करते केवल जल विमोचन...
उपासना के मिष से
वासना का, रागरंगिनी का
उत्कर्षण हा! दिग्दर्शन...
नहीं......नहीं ..... कभी नहीं...
महावीर से साक्षात्कार...

वे सुंदरतम दर्शन
उषा वेला में
गात्र पर पवित्र
चित्र-विचित्र
पहन कर वस्त्र
सह-कलत्र-पुत्र
युगवीर चरणों में

सबने किया मोदक समर्पण

किन्तु खेद है...

अच्छ स्वच्छ औ' अतुच्छ

कहाँ बनाया मानस दर्पण ?...

तमो-रजो-गुण तजो

सतो गुण से जिन भजो

तभी मँजो.....तभी मँजो

जलाओ हृदय में जन जन दीप

ज्ञानमयी करुणामयी

आलोकित हो/दृष्टिगत हो/ज्ञात हो

ओ सत्ता......जो समीप...।

❑ ❑ ❑
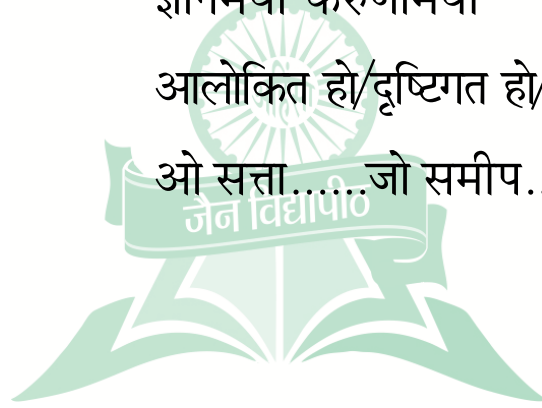
बिन्दु में क्या ....?

मम चेतना की धरती पर
उतर आया है सहज
एक भाव
कि
अब इस बिन्दु को
विनीत भाव से
अर्पित/समर्पित कर दूँ
सिन्धु को
क्योंकि व्यक्तित्व की
सत्ता का
अनुभव
सुख का नहीं
दुख का
अमूर्त का नहीं
मूर्त का
द्रव्य द्रष्टा का नहीं
क्षय दृश्य का
दर्शक है
.....नितान्त!
हे अपार सिंधु! अपरंपार!
इस बिन्दु को
अवगाह दो
अवकाश दो
अपनी अगम/अथाह
महासत्ता में
जिसमें मनमोहक
सुख-संदोहक
अविरल/अविकल
तरल तरंगें उठती हैं
ओर-छोर तक जा...
लीन/विलीन हो जाती हैं
उस दृश्य को
तुम्हारी पीठ पर
आसीन हो...
......देख सकूँ
किन्तु वे
बिन्दु में क्या...?
उठती हैं!
क्या...
बिन्दु के बिना
......उठती है।

❑ ❑ ❑

नर्मदा का नरम कंकर

युगों-युगों से
जीवन विनाशक सामग्री से
संघर्ष करता हुआ
अपने में निहित
विकास की पूर्ण क्षमता संजोये
अनन्त गुणों का
संरक्षण करता हुआ
आया हूँ
किन्तु आज तक
अशुद्धता का विनाश
ह्रास
शुद्धता का विकास
प्रकाश
केवल अनुमान का
विषय रहा.....विश्वास
विचार साकार कहाँ हुए ?
बस! ..... अब निवेदन है
कि
या तो इस कंकर को
फोड़-फोड़ कर
पल भर में
कण-कण कर
शून्य में...
.... उछाल
.....समाप्त कर दो
अन्यथा
इसे
सुन्दर सुडौल
शंकर का रूप प्रदान कर
अविलम्ब .... इसमें
अनंत गुणों की
प्राण-प्रतिष्ठा
..... कर दो
हृदय में अपूर्व निष्ठा लिए
यह किन्नर
अकिंचन किंकर
नर्मदा का नरम कंकर
चरणों में
उपस्थित हुआ है
हे विश्व व्याधि के प्रलयंकर!
तीर्थंकर!
शंकर!

❑ ❑ ❑

पूर्ण होती पाँखुड़ी

अकस्मात्
अप्रत्याशित
घटना घटी
न ज्ञान था
न अनुमान
भाग्य...!
अपरिमाण का
अपरिमाण का प्रमाण का
....साक्षात्कार!
परिणाम यह हुआ
कि
अप्रमाण-परिमाण में
विनत भाव पूरित
परिणाम आविर्भूत हुआ है
कि स्वीकार हो
प्रणाम...!
किन्तु
कर-कमल कुड्मलित नहीं हुए
मुकुलित नहीं हुए
खिले खुले ही रहे
याचक बन कर...!
मस्तक तक अवनत नहीं हुआ
मुख खुला नहीं
.....रहा बन्द

अन्दर उठते हुए शब्द
नहीं बने मधुर छन्द
बाहर आकर...!
क्योंकि
विषयों की विषय दाह से
पूरी तपी चिर तृषित
आमूल चूल फैली चेतना
संकुचित हो, संकलित हो
आँखों में आ
आँखों से
हे पीयूष पूर!
रूपागार...!
अनगार...!
अपरूप रूप का/अरूप का
अनुपान कर रही
उस तरह
जिस तरह
ग्रीष्मकालीन
तरुण/अरुण की
प्रखर किरणों से
संतप्त धरती
वर्षाकाल के
अपार जल को
बिना श्वास लिये
पीती है...!

❑ ❑ ❑

प्रभु मेरे में/मैं मौन

लोक को
अलोक को
आलोकित करने वाले
आलोक धाम
ललाम लोचनों का
अलोल
अडोल
तिमिराच्छन्न
लोचनों ने
अवलोकन किया
धन्य!
प्रतीत हो रहा है
कि
मम लोचन प्रतिछवि में
प्रकाशपुंज प्रभु
तैर रहे हैं
अपने पावन जीवन में
एक साथ
उघड़े हुए अनंत गुणों के साथ
अद्‌भुत परिणमन यह
काल...!
भेद की रेखा

आल-जाल
अन्तराल
कहाँ संवेदित है ?
कि
मैं कौन...?
प्रभु कौन...?
दोनों दिगम्बर
    मौन...!
    इस परिणमन के केन्द्र में
    मुख्य औ गौण की विधि
    स्वयं गौण!
इसी बीच
मेरे मन में
विकल्प ने करवट लिया
कि
ध्रुव को छूने के लिए
यह सुंदर अवसर है
    और मैं...
    सविनय...
    दोनों घुटने टेक
    पंजों के बल बैठ
दो-दो हाथों से
अकम्प/अक्षय/अखंड दीपक की ओर
चिर बुझा...
दीपक बढ़ाया...

जलाने...
जोत से जोत मिलाने
किन्तु
न जाने
यह कौन सी सत्ता
बलवत्ता ने
महासत्ता की ओर
जाती हुई मम-सत्ता को
रोका है...
टोका है...
मध्य में
व्यवधायक बन
व्यवधान उपस्थित किया है
अकस्मात्...
अकारण...
हे तरण तारण...
चरणों में शरणागत को
दो शरण
दो, दो किरण...!

❑ ❑ ❑

समर्पण द्वार पर

दिगम्बरी दीक्षा
पश्चात्
पावन वेला में
परम पावन/तरण-तारण
गुरु चरण सान्निध्य में
ग्रन्थराज 'समयसार' का
चिंतन
मनन
अध्ययन
यथाविधि प्रारंभ हुआ
अहा!...
यह थी गुरु की गरिमा
महिमा/अस्तिमा
कि
कन्नड़ भाषा-भाषी
मुझे
अत्यन्त सरल/श्रुति-मधुर
भाषा-शैली में
'समयसार' के
हृदय को
खोल-खोल कर
बार-बार दिखाया
प्रति गाथा में

अमृत ही अमृत भरा है
और
मैं पीता ही गया...
......पीता ही गया...
माँ के समान गुरुवर
अपने अनुभव और मिला कर
घोल-घोल कर
पिलाते ही गये
पिलाते ही गये!...
मुझे!
शिशु-बाल मुनि को!
फलस्वरूप
उपलब्धि हुई
अपूर्व विभूति की
आत्मानुभूति की
और 'समयसार'
ग्रन्थ भी
......ग्रन्थ/परिग्रह...
प्रतीत हो रहा है
पीयूष भरी गाथायें
रसास्वादन में
डूब जाता हूँ...
अनुभव करता हूँ
कि
ऊपर उठता हुआ...
......उठता हुआ

ऊर्ध्वगममान होता हुआ
सिद्धालय को
पार कर गया हूँ...
सीमोल्लंघन कर गया हूँ...
अविद्या कहाँ...?
कब ?
सरपट चली गई
पता नहीं रहा
आश्चर्य यह है कि
जिस विद्या की चिरकालीन
प्रतीक्षा थी...
उस विद्यासागर के भी पार...
......बहुत दूर...
......दूरातिदूर...
पहुँच गया हूँ
अविद्या/विद्या से परे
ध्यान-ध्येय/ज्ञान-ज्ञेय से परे
भेदाभेद/खेदाखेद से परे
उसका साक्षी बनकर
उद्ग्रीव उपस्थित हूँ
अकम्प निश्चल शैल!...
चारों ओर छाई है
सत्ता/महासत्ता...
सब समर्पित/अर्पित
स्वयं अपने में

❑ ❑ ❑

जीवित समयसार

शुद्धता की चरम सीमा पर
सानन्द नर्तन करता हुआ
शुद्ध स्फटिक मणि से
निःसृत
दधि/दुग्ध-धवलित
निर्जरा का निर्झर!
झर! झर! झर!
झर रहा...
अरुक/अथक
अनाहत गति से
उस ध्रुव बिन्दु की ओर...
अपार अनंत
सिन्धु की ओर...
पथ में किसी से
वार्ता नहीं
किसी से चर्चा नहीं
किसी प्रलोभनवश
किसी सम्मोहनवश
अन्य किसी की अर्चा नहीं
तथापि मौन भाषा में
अविरल/अविकल
मनमोहन संगीत...

गुनगुनाता...
सहज सुनाता
जा रहा...! कि
उपास्य के प्रति
अपने जीवन के
अपने सर्वस्व के
अर्पण में
समर्पण में ..... ही
उपासना का
साकार!...
निराकार!...
निर्विकार!...
दर्पण निहित है
जिस दर्पण में
उपास्य की
उपासक की
एवं
उपासना की
गतागत
अनागत प्रतिछवियाँ
गुण–मणियाँ
झिलमिल झिलमिल
निधियाँ...
तरल तरंगित हैं

लो...!
यह कैसा ? अद्भुत परिणमन
विविध गुणों के सुमन
विलस रहे हैं
वस्तुतः सब कुछ उपलब्ध हुआ है
इस समय
तभी खुल खिल विहँस रहे हैं
प्रति समय
उनके परिणाम
अविराम विनस रहे हैं
किन्तु गुणों का अभाव!...
नहीं हो रहा है...
......रहा है सद्भाव
तद्भाव!
क्योंकि परिणमन रूपी
बहता हुआ पवन
मन्द-मन्द
उन गुण सुमनों के
मकरन्द को
सम्पूर्ण चेतना-मंडल में
प्रसारित कर रहा है
फलस्वरूप
समग्र जीवन सुगंधित हो
महक उठा है

सुन लो...!
तब यह गीत
चहक उठा है...
    यह है चिदानन्दमयी
    नन्दन!...
यहाँ
ना तो बन्धक है
ना बन्धन!...
    ना तो क्रन्दक है
    ना क्रन्दन!...
और...
......और क्या
ना तो वन्दक है
ना वन्दन!...
    चेतना की यह असीम
        ......अपार धरती
    एक अपूर्व संवेदनामय
    हरीतिमा से उल्लसित
        पुलकित है
लो! मन को हरती है
भूत नहीं है
    अभूत!...
    अनुभूत नहीं है
    अननुभूत...

अद्‌भुत!...

यह भी निश्चित
विदित हुआ है
कि
अतीत का सृष्ट नहीं है, असृष्ट
दृष्ट नहीं है, अदृष्ट
ऐसे दृश्य पर
दृष्टिपात किया है
इस मौन द्रष्टा ने
स्वयं के स्रष्टा ने
एक सौम्य भाव से...
सहज भाव से
जिस दृश्य का दर्शन
दुर्लभ, दुर्लभतर, दुर्लभतम है
नागलोक के नागेन्द्रों
अमरलोक के अमरेन्द्रों
नरलोक के नरेन्द्रों
एवं
तत्त्व-चिंतन के घूँघट में रहने वाले
विषयों के दास
दासानुदास
विषयी विलासियों को
इतना ही नहीं
जिन की ज्ञान-चेतना मोहग्रस्त है
और...
......और क्या
मात्र क्रियाकाण्ड में व्यस्त

मस्त!...
साधु संन्यासियों को भी
यह श्रुत परिचित/विदित
सकल संसार/विकल अपार
सागर है
क्षार
दुख से भरपूर
ऐसा मानता आया
आभास करता आया
अब तक!
आनंद से
सहज सुख से
रहा मैं दूर...
किन्तु आज वह
झूठी
भ्रान्त धारणा टूटी
जीवन में
आलोक की
प्रखर किरण फूटी है
और मैं...
आसीन हूँ
सुखासीन हूँ
स्वाधीन हो
विभाव के अभाव में
तनाव के अभाव में

सहज स्वभाव में
चेतन की छाँव में
लो!
अनुभव कर रहा हूँ/कि
सत्य प्रमाणित होता जा रहा है
तथ्य सम्मानित होता जा रहा है
सुख को
मेरा कृत्य अबाधित
बोता जा रहा है
संसार
नहीं असार
नहीं क्षार
.....सागर.....
किन्तु सम/सम्यक्
समीचीन सार
है संसार...!
साकार/चेतनाकार
सब सारों का सार
जीवित समयसार!

❑ ❑ ❑

शरण-चरण

शरद जलद की
धवलिमा सी
छवि धारती
मृदुल-मृदुलतम
सकल दलों सहित
मम चेतना कुमुदिनी के
विकास ह्रास उल्लास में...
आपके
शुभ्र-शुक्ल
अतुलनीय कमनीय
वर्तुलीय
विमल निर्मल
शीतल
मुख मण्डल से
पराजित हुआ
लज्जित हुआ
पूर्ण चन्द्र भी
चूर-चूर हो
अशरण हो
आपके
तारण-तरणों
चरणों में
शरणाभिलाषी
दिन-रात...
सेवारत
नखावलि के मिष!
कारण है!
हे! जगदीश!
सकलज्ञ धीश!

❑ ❑ ❑

दर्पण में एक और दर्पण

हे! कंदर्प-दर्प से शून्य!
जित कंदर्प!
सम्पर्क में
जब से
आया हूँ
आपके...!
आपके
तप्त कनकाभ तन के
मेरु अकम्प मन के
नीर-निधि गंभीरतम
दिव्य श्राव्य वचन के
और!...
महासत्ताभिभूत
गुणगण के
परिणमन का
प्रभाव!
ऐसा पड़ा है
मुझ पर!...
कि
अकृत पूर्व निजी कार्य में
अनिवार्य मैं
अहर्निश हुआ हूँ
तत्पर!...

और यह क्या ?
जीवन का वह प्राचीनतम रंग
चंचल सकम्प मन का ढंग
अंग व्यंग और अनंग!
पूर्णतः परिवर्तित हो गया है
एक मौलिक
अलौकिक आभा में
तुम सा...!

किन्तु!
इसमें
केवल!
आपकी ही विशेषता नहीं है!
मेरी भी!...
आप में
प्रभावित करने की शक्ति निहित है

तो!...
इस चेतन में प्रभावित होने की
भावित होने की
यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध है
आप निमित्त हैं बाह्य कारण
मैं उपादान आभ्यंतर
अनन्यतर
इतना ही मुझमें और आप में...
अंतर
उचित ही है

प्रत्येक निमित्त, प्रत्येक उपादान को
प्रभावित नहीं कर सकता
हाँ! प्रत्येक उपादान, प्रत्येक निमित्त से
प्रभावित भी कहाँ होता ?

लाल-लाल कोमल
गुलाब फूल!
उज्ज्वल/उज्ज्वलतम
स्फटिक मणि को
अपनी आभा के अनुरूप
अनुकूल
भावित करता है
किन्तु...
पाषाण खंड को क्यों नहीं करता ?

❑ ❑ ❑

वंशीधर को

हे अनंत!

हे अमूर्त!

अनंत अमूर्त आकाश में

होकर भी

विमलता की अभ्रंलिहा

शिखरिणी पर

आवास/अवकाश है आपका

जब ये मूर्त लोचन

विषयातीत होकर भी...

विषय नहीं बना पाये आपको

तब...!

अन्य सभी कार्यों से उदास

यह मेरा मन

क्षण-क्षण

आपके श्रुत का आधार ले

आप तक पहुँचने का प्रयास

प्रारंभ किया है

लो! अनायास

श्वास श्वास पर

आपके नाम अंकित आसीन

कराता

श्वास नाभिमंडल से
प्रतिक्रमा के रूप में
हृदय-कमलचक्र से
पार कराता हुआ
ब्रह्मरंध्र तक पहुँचाता
ऊर्ध्वगम्यमान
आज...!
आपका श्रुतिमधुर संगीत
निजी श्रवणों से
साक्षात्कार कर रहा हूँ

निस्संग हो
निश्शंक हो
निडर/निश्चिंत हो
मौन! मृदु मुस्कान के साथ
हे! नाथ!

उचित ही है
पुखराज की हरीतिमा को
जीतने वाली
चंचल माला लचीली
पतली तनवाली

थोड़ा-सा
पवन का झोंका खा
झट-सी धरा पर गिरने वाली

माधुर्य मार्दववती
माधवी लता
अपदा!.....अशरणा भी!...

उत्तुंग ऋजु वंश की
शरण ले
वंश से लिपटती-लिपटती
गुरुओं के प्रति समर्पण जीवन में
अवंशजा पर...!!
वंश-मुक्ता को
औ !...
वंशीधर को भी
प्रभावित करती हुई
वंशातीत हो
शून्य में...
शून्य से
वार्ता करती
लहलहाती
क्या नहीं जीती...?

❑ ❑ ❑

विभाव अभाव

हे! प्रभो!
आपने
सिद्धांत के सारमय
समयसारमय
वीतराग वीतमोह
स्वभाव भाव की
प्रसूति से
पर निरपेक्ष
स्वापेक्ष विभूति से
शुद्धात्मानुभूति से
वैभाविक/औपाधिक
क्रोध प्रणाली को
जो संसार की पृष्ठभूमि है
जड़ है
अपने चेतन के धरती-तल से
आमूल उखाड़ दिया है

अन्यथा...
आपाद कंठ
अंग अंग
औ उपांग
आपके
अनंग के अंग की
नैसर्गिक आभा का
उपहास करने वाले
पलाश के उत्फुल्ल
फूल की लालिमा को
धारण करते हैं
किन्तु...
करुणा रस से आपूरित
लबालब
निश्चल अडोल
विशाल दो लोचन
लाल अरुण वर्ण से
वंचित क्यों ?...
रंजित क्यों नहीं...?

❑ ❑ ❑

हे निरभिमान!

अहर्निश आत्मा में
ध्यान निधिध्यास
अध्यास/अभ्यास के
फलस्वरूप
आपमें हुआ है
सम्यग्ज्ञान रूपी
जाज्वल्यमान
प्रमाण का
आविर्माण...!
इसीलिए
चेतना की समग्र सत्ता पर
पूर्ण प्रभाव डालता
विद्यमान
मूर्तमान
मान ने
भावी अनंतकाल के लिए
आपको अपनी पराजित
पराभूत!
पीठ दिखाता
धावमान...
किया प्रयाण...

हे निरभिमान!
यह अंतर्घटना की भावाभिव्यक्ति
प्रमाण की सघन शान्त छाँव में
सहज सहवास में
रहने वाली
धरती निरखती
आपकी नत/विनम्र नासिका ने
मानाभिभूत मान की मूर्ति
पूर्ण फूला चम्पक फूल को
जीतती हुई
की है...!

❑ ❑ ❑

आकार में निराकार

स्वयं को अवगाहित कर रहा हूँ
अतल अगम सत् चेतना के गहराव में
मस्तक के बल पर
दोनों हाथों से
नीचे से नीर को चीरता हुआ...
..... चीरता हुआ
ऊपर की ओर फेंकता हुआ...
.....फेंकता हुआ
जा रहा हूँ...
आर पार होने
अपार की यात्रा करने
पथ में कोई आपत्ति नहीं है
आपत्ति की सामग्री अवश्य!...
ऊपर-नीचे
आगे-पीछे
बिछी है
किन्तु ..... अभी कोई ओर छोर...
दृष्टि में नहीं आ रही है
शोर भी तो नहीं
चारों ओर मौन का साम्राज्य
विस्तृत वितान
बस!
सब कुछ स्वतंत्र

अपनी-अपनी सत्ता को सँजोये हुए
सहज सलील समुपस्थित
परस्पर में किसी प्रकार का टकराव नहीं
लगाव के भाव नहीं
अपने-अपने ठहराव में
अपने-अपने संवेदन
अपने-अपने भाव
पर से भिन्न
अपने से अभिन्न
निरभ्र आकाश मंडल में
उडुदल की भांति
ज्ञानादि उज्ज्वल-उज्ज्वल गुणमणियाँ
अवभासित हैं
अवलोकित हैं
आलोक का परिणमन यहाँ
घनीभूत प्रतीत होता है
लो!
यहीं पर मिथ्यात्व-रूपी मगरमच्छ
से भी साक्षात्कार
किन्तु उधर से आक्रमण नहीं
कटाक्ष नहीं
संघर्ष के लिए
कोई आमंत्रण भी नहीं
अनंत काँटों से निष्पन्न
उसका शरीर है
कठोरता का शुद्ध परिणमन
कठोरता की परम सीमा है

परन्तु ..... मृदुता से विरोध नहीं करता
विरोध में बोध कहाँ ?
बोध बिना शोध कहाँ ?
विरोध तो अज्ञान का प्रतीक
अन्धकार...
ओ!
नयन-गवाक्षों से
फूटती हुई
अबाधित ज्योति किरण
मेरी ओर चाँदी की पतली धार सी
आ रही है
सानन्द आसीन है
सत्तागत अनन्तानुबंधी सर्प
कंदर्प दर्प से पूरा भरा है
ज्ञान ज्ञेय का सहज संबंध हुआ
शुद्ध सुधा
और विष का संगम हुआ
यह ज्ञान के लिए अपूर्व अवसर है
ज्ञान न तो दुखित हुआ
न सुखित हुआ
किन्तु ..... यह सहज
विदित हुआ .... कि
ध्यान ध्येय संबंध से भी
ज्ञेय-ज्ञायक संबंध
महत्वपूर्ण है
पूर्ण है/सहज है
कोई तनाव नहीं

इसमें केवल स्वभाव है
भावित भाव!...
ध्येय एक होता है
जब ध्यान में ध्येय उतरता है
तब ज्ञान ससीम संकीर्ण होता है
संकुचित ज्ञान
अनंत का मुख छू नहीं सकता
अतः ज्ञान प्रवाहित होता हुआ
अनाहत बहता हुआ...
जा रहा है...
सहज अपनी स्वाभाविक गति से
अद्भुत है!
अननुभूत है!
विकार नहीं
निर्विकार
तप्त नहीं
क्लान्त नहीं
तृप्त है
शान्त है
जिसमें नहीं ध्वान्त है
.....जीवित है
जाग्रत भी नितान्त है
अपने में विश्रान्त है
यह विभूति
अविकल अनुभूति
ऐसे ज्ञान की शुद्ध परिणति का ही
यह परिपाक है

कि उपयोग का द्वितीय पहलु
दर्शन अपने चमत्कार से परिचित कराता
अब भेद.....पतझड़ होता जा रहा है
अभेद की वसंत-क्रीड़ा प्रारंभ
द्वैत के स्थान पर
अद्वैत उग आया है
विकल्प मिटा
आर-पार हुआ
तदाकार हुआ
निराकार हुआ
समयसार हुआ
.....वह मैं...!
मैं.....मैं सब
प्रकाश में प्रकाश का अवतरण
विकाश में विनाश उत्सर्गित होता हुआ
सम्मिलित होता हुआ
सत् साकार हो उठा
आकार में निराकार हो उठा
इस प्रकार
उपयोग की लम्बी यात्रा
मत् त्वत् और तत् को
चीरती हुई
पार करती हुई
आज...!
सत् में विश्रान्त है
पूर्ण काम है
अभिराम है

हम नहीं
तुम नहीं
यह नहीं
वह नहीं
मैं नहीं
तू नहीं

सब घटा
सब पिटा
सब मिटा

केवल उपस्थित!...
सत् सत् सत् सत्
है... है... है... है...।

❑ ❑ ❑

स्थित प्रज्ञा

चेतना के भीतरी मध्यभाग में
परम विशुद्ध/सहज
तीन रेखायें
समग्र आत्मप्रदेशों को
अपने प्रभाव से
प्रभावित करती हुई
आपकी कायागत
बाहरी ग्रीवा की शोभा वैभव में
और मंजुता की छटा उत्कीरती
विस्तृत फैलाती
सम्यग् दृष्टि
स्थित प्रज्ञा
विरागता के परिवेश में
प्रतिछवि सी
आपके कण्ठप्रदेश पर
केन्द्रीभूत हो
जगमग जगमग
जगी हैं...!
फलस्वरूप
आपके कण्ठ को देख
अपने कण्ठ से तुलना कर
स्वयं को अतुल अमूल्य
समझने वाला
दिव्य शंख भी
स्वयं को निर्मूल्य/नगण्य
समझकर
लज्जातिरेक से
लज्जित हो
विकल हो
सर्वप्रथम चिंता में डूब गया
दिन प्रतिदिन
वह
उस चिंता के कारण
सफेद हुआ...
और अन्त में
ऐसा विचार करता है
कि
संसार को मुख दिखाना
कैसा उचित होगा अब...
मध्य रात्रि में उठकर
अपार जलराशि में जाकर
डूब गया...!
अन्यथा
सागर में उसका
अस्तित्व क्यों...?
हे भगवन्!!...

❑ ❑ ❑

अक्षरों पर (अभिव्यक्ति)

केवल अनुमान नहीं है
यह पूर्ण स्पष्ट है
प्रत्यक्ष प्रमाण है
कि
अक्षय/अव्यय
आनन्द का अपार/अपरम्पार
सुधा सागर
अनन्त विध गुणों
उन परिणमनों की
अपरिमित लहरों से
लहरा रहा है
निरन्तर...!
आपके
विशाल पृथुल अगाध
उदर के अन्दर...!

अन्यथा
मूँगे की मंजु अरुणिमा भी
स्वयं
जिनके आश्रम में
प्रतिदिन पानी भर कर
अपने को कृतार्थ मानती है
ऐसे आपके
लाल लाल
विमल निहाल
अधरों के अग्रभाग पर
हाव-भाव सहित
सोल्लास
मंद-स्मित-नर्तकी
नर्तन क्यों कर रही है...?
हे! विभो!

❑ ❑ ❑

अर्पण

शशिकला के
मृदुल कल करों का
प्रेम क्षेम
परम प्यार
पाकर
विलासिता का
विकासता का
सरस पान करती
शशिकला की सितता को
अपनी कोमल छवि से
जयशीला
कुमुदिनी
औ
प्रखर प्रचण्ड
प्रभाकर कर-नखघात से
खुलकर/खिलकर दिनभर
विहसनशीला
अनुपमलीला
विकरणशीला
कमलिनी भी
अकुलाती
जल जाती
जीवन से हाथ धोकर
रूप-लावण्य खोकर
दृष्टि अगोचर
होकर...
मिट्टी में मिल जाती
हेमन्तीय
हिमालय का
हिममय चूड़ा...!
छूकर उतरा
हिम मिश्रित
समीर-स्पर्श
पाकर !...
किन्तु
यह कैसी!...
अद्भुत घटना
विरोधाभास ?
कि बाहर भीतर
शीतल
होता जा रहा हूँ...
हे शीतल!
शीतलता की तुलना
किस विध करूँ ?
किस शीतलता के साथ ?
ऐसा शीतल पदार्थ नहीं
धरती तल पर
...जब से आप
निष्पाप निस्ताप
कृपाकर!

कर कृपा
मुझ पर!...
मम मानस-पद्मिनी पर
जो थी
चिरकाल से
कुड्मलित
निमीलित
उदासीन
हुए हैं
आसीन
...तब से
होती जा रही वह
विकसित
विलसित
विहसित
अन्तहीन
अनन्त काल के लिए
और...
वैसे आपका शैत्य
अगम्य... अकथ्य!
यह पूर्ण सत्य है
तथ्य है
किसविध
शब्दों से कर सकूँ ?
अकथ्य का कथन
मथन

क्योंकि
शीतलधाम/ललाम
शीतांशु
सुधा का आकर भी
तरुण अरुण की किरणों से
तप-तप कर
सुधा विहीन
होता हुआ दीन
शीतोपचारार्थ
अमा औ प्रतिपदा की
घनी निशा में आकर
आपके तापहारक
शान्ति प्रदायक
पाद प्रान्त में
शांत छाँव में
पड़ा रहता है...
अन्यथा
उन दिनों
नभ-मण्डल में
वह दिखता क्यों नहीं ?
हे अविनश्वर!
सघन ज्ञान के
ईश्वर!

❑ ❑ ❑

लाघव भाव

जिनके जीवन में
निरन्तर अनुस्यूत
बहती रहती
मानानुभूति
ज्ञान की
आपको
अपना ज्ञान
विज्ञान
प्रमाण
दर्शित/प्रदर्शित कर
अपमानित करने का
लाघव भाव
विभाव
वैभाविक मन में
भावित कर
आपके सम्मुख
उद्ग्रीव मुख
विनय-विमुख
फूल समान
नासा फुलाते
पहली बार
खड़े हैं

अपने ध्रुव पर
अड़े हैं
भावी गौतम!
इन्द्रभूति!!
मोहातीत
मायातीत
औ अपूर्ण ज्ञान से
सुदूर/अतीत हो
तुहिन कण की उजल आभा
सी
स्फटिक शुद्ध पारदर्शिनी
स्व-पर-प्रकाशिनी
सकलावभासिनी
परम चेतना रूपी
जननी के
पावन पुनीत
परम पद-प्रद
पदपद्मों में
अपनी कृतज्ञता का भाव
व्यक्त
अभिव्यक्त करते हुए
विनत मन

प्रणत तन
नत नयन
अंग अंग औ उपांग
नमित करते
अमित अमिट
अतुल/विपुल
विमल/परिमल
गुण गण कमलों का
अर्घ अर्पित
समर्पित करते
आपको
निरखते हैं...
उस तरह
जिस तरह
हरित भरित
पल्लव-पत्रों
फूले फूलों
फलों दलों से
लदा हुआ
मस्तक झुकाता
अपनी जननी
वसुंधरा के
चरणों में
विनीत
वह पादप!
प्रतिफल यह हुआ
कि
उनके मानस-सरोवर में
कल्पनातीत
आशातीत
विकल्पों की
तरल तरंगमाला...
पल भर बस
परवश
तरंगायित हो
उसी में उत्सर्गित
तिरोहित
इस निर्णय के साथ
हाय रे!
अब तक
मेरा निर्णय, निश्चय
निश्चय से
सत्य तथ्य से
अछूता रहा
नश्वर असत्य
सारहीन को
छूने
दीन बना है...
भ्रमित मन
छटपटा रहा है
मम आत्मा मान से सन्तुष्ट

वह आत्मा प्रमाण से सम्पुष्ट
मैं परिधि पर भटक रहा
अटक रहा
मेरा मन
विषयों के रस में
चटक मटक कर रहा
यह केन्द्र में सुधारस
गटक रहा
मैं उलटा लटक रहा
यह सुलटा
अनन्य दुर्लभ
सुख सम्वेदनशील
घटना का घटक रहा
मैं विभाव भाव दूषित
यह स्वभाव भाव भूषित
मैं परावलम्बित
पराभूत
यह स्वावलम्बित
अभिभूत
पूत !...
इसके इस
तुलनात्मक दृष्टिकोण ने
मौन का विमोचन कर
अपने अंग-अंग को
सामयिक
आदेश इंगन से
इंगित किया
कि हो जाओ
जागृत! सावधान!
अपने कर्तव्य के प्रति
प्रतिपल...!
लोचन युगल
एक गहरी नती की अनुभूति में
लीन हो डुबकी लगाने लगा
कर कमल
प्रभु के चरणों में
समर्पित होने
उद्यत आतुर...
जुड़ गये
घुटने धरती पर
टिक गई
पंजों का सहारा
एड़ी पर पीठ
आसीन
और
भूली फूली
नासिका
प्रायश्चित माँगती

धरती पर रगड़ने लगी
अपनी अनी!...
उत्तमांग
चिर समार्जित
मान का विसर्जन करने
            कृतसंकल्प
प्रणत!...
अनन्त काल के लिए
हे अनन्त के पार उड़ने वाले!
अनन्त सन्त...!!

❑ ❑ ❑

प्रतीक्षा में

सप्तम पृथ्वी का
रवरव नरक
रसातल से भी नीचे
निगोद के तलातल
पाताल से निकला हुआ
किसी कर्मवश
ऊर्ध्वगम्यमान
दुर्लभतम
जंगमवान हुआ
सुकृत योग
शुभोपयोग
संयमवान हुआ!...
यह यात्री
यात्रातीत होने
भवभीत हो/विनीत हो
एक अदम्य जिज्ञासा के साथ
आप से, धर्मामृत पान करने की
प्रतीक्षा में...
उस तरह
जिस तरह...
अपने पुरुषार्थ के बल पर
क्षार सागर के
अगम/अगाध तल से
ऊपर उठकर
सागर जल के
अग्रभाग पर
आकर!...
अपने को कृतार्थ बनाने
यथार्थ बनाने
सुचिर काल
क्षार जल के सेवन से
फटा हुआ/मुँदा हुआ
मुख खोलकर
वर्षाकालीन
नभ मण्डल में
जल से लबालब भरे
विचरते/सहज डोलते
सभी जलद दलों की
अपेक्षा नहीं करती
केवल!...
स्वाति नक्षत्रीय!...
मेघमाला से
मौन! किन्तु...
भावविभोर हो
प्रार्थना करती

अपनी कारुणिक आँखों से
पूजा करती
मौलिक मौक्तिक मणियों में
ढलने की प्रकृति वाले
अमृतमय शान्त शीतल
उज्ज्वल जलकणों की
प्रतीक्षा में
वह शुक्तिका...!

❑ ❑ ❑

अमन

हे! जितकाम
ललाम
आपने ऐसा
कौन सा किया है काम
कि
काम का तमाम काम
हो बेकाम
आगामी सीमातीत काल तक
अनुभव करता रहेगा
विराम का
विदित होता है कि
युक्ति से काम लिया है आपने
शक्ति से नहीं
एक पंथ दो काज!...
इस सूक्ति का निर्माण किया है
यथार्थ में
आपने
चिरकालीन चंचल मन की सत्ता
को
जो है
पर से प्रभावित चेतना का ही
एक विकृत परिणाम
दुखधाम
और मनोज का
अधिकरण
उद्‍गम स्थान
अधिष्ठान
हे आप्त!
समाप्त किया है...!
आपकी दृष्टि
मूल पर रही
चूल पर नहीं
कारण के नाश में
कार्य का
विकास/विलास
संभव नहीं/असम्भव!
कारण के सहवास में
कार्य का
वह विनाश भी
असंभव!...
यह व्याप्ति है
औ आपका न्याय-सिद्धान्त
हे शंभव!
इसलिए आपका संदेश है
आदेश है कि
दूर रहो...
हे भद्रभव्यो!...
मन से
मनोज से
एवं
मनोज के बाण
सुमन से...
फिर बनो
अमन...!

❑ ❑ ❑

वहीं वहीं कितनी बार

हे अभय!

दान विधान-विधाता

दयानिधान

करुणावान

श्रीपाद-प्रान्त में

कुछ याचना करने

याचक बन कर!...

गायक रूप में

आया था

चाहता था कुछ

स्वच्छ साफ धोना

बाहर से होना

सुन्दर सलोना

किन्तु...

यह आपकी सहज

समता कृति

आकृति

इस विषय का परिचायक है

कि

इच्छा याचना
दीन-हीन...
दयनीय भाव से
परोन्मुखी हो
पर सम्मुख
हाथ पसारना
आत्मा की संस्कृति
प्रकृति नहीं है
विभाव संस्कारित
विकृति है
पल पल मिटती
पलायु वाली
परिणति है
लो! यह भी अज्ञात ज्ञात हो
कण-कण से मिलन हुआ
अणु-अणु का छुवन हुआ
पुनि पुनि बिछुड़न
छुड़न हुआ
विभ्रम से भ्रमित हो
लक्ष्यहीन अन्तहीन
उसी ओर मुड़न हुआ
भव-भव में भ्रमण हुआ
पुनः पुनः/वहीं वहीं...
गमनागमन हुआ

महाकाल का प्रभाव
दाव
बाहर से दबाव
भीतर भावुक भाव
काल का अनुगमन हुआ...!
यह मात्र
वर्तन/परिवर्तन
परिणमन हुआ!...
हो रहा होगा
त्रैकालिक
वैभाविक
या स्वाभाविक
यह आन्तरिक
चरण चरण!...
संचरण!
जिसका उपादान
साधकतम, बाधकतम
जो भी हो
स्वायत्त पुरुषत्व
करण रहा
अधिकरण रहा...
काल नहीं
काल की चाल नहीं
उदासीन
भाल पर लिखित
दैव का भी सवाल नहीं
किन्तु

चिरन्तन घटना में
कुछ भी घटन नहीं
कुछ भी बढ़न नहीं
हुआ हनन नहीं
अंश अंश सही
रहा कण कण वही
और रहा वहीं...
मेरा पर में
पर का मुझ में
मात्र आभास
मिश्रण-सा
किन्तु...
कहाँ हुआ संक्रमण
संकर दोषातीत
ध्रुव पिण्ड रहा यह!
अब क्या होना
होना ही अमर रहा
होना ही समर रहा
समर रहा!...
होना ही उमर अहा!
चैतन्य सत्ता के
मणिमय आसन पर
आसीन पुरुष का
होना ही!...
छायादार छतर रहा
सुगंध वाहक चमर रहा

औ अधिगत हुआ
अवगत हुआ
कि यह दान का
विधि-विधान
बाहरी घटना है
औपचारिकी
कर्मजा!...
अन्तर घटना नहीं
क्योंकि
परस्पर/आपस में
उपादान का
आदान-प्रदान
नहीं होता
उसका केवल होता
अपने में ही
आप रूप से
आविर्माण
हे कृतकृत्य!
उपकृत हुआ
एक अननुभूत
पूत सम्वेदनामय
निराकार आकार में
जाग्रत होकर
आकृत हुआ
धन्य...!

❑ ❑ ❑

डूबा मन रसना में

अरी रसना!

कितनी लम्बी स्थिति है तेरी

मरी नहीं तू अभी

मेरी उपासना

मुझे स्वयं करना

किन्तु

मेरी शक्ति/क्षमता

मेरे पास ना!

मेरे वश ना!

वासना की वसना

जो दृष्टि अगोचर/अगम्य

ओढ़ रक्खी है तूने! ... हा!...

चाहती नहीं तू

अपने में वसना

तेरी निराली है

रचना

स्वाभाविक-सा बन गया है

तेरा कार्य, पर में

रच पचना

कभी मिठास की आस

मधुरिम मोदक चखती

श्रीखण्ड चखने सदा
उत्कण्ठिता/कंठ फुलाती
संतुष्टा तृप्ता कदा
क्या होती मुधा ?
कभी कभी
सुर सुर करती दिखती
चरपरा
चाट चाटती
तत्परा परा
निरे निरे औ
नये नये नित
व्यंजन स्वाद विलीना
स्व-पर-बोध-विहीना
राग रागिनी वीणा
उधर
उदारमना
उदर को भी
उपेक्षित करती
उदास करती
अपनी पूर्ति में
अपनी स्फूर्ति में
नित निरत रहती
किन्तु
तेरी क्षुधा कभी मिटती भी
क्या नहीं ?
ब्रह्माण्डीय रस-राशियाँ
तेरी अनीकी भीतरी शरण में

समाहित हुई हैं जा जा
आज तक
अगाध गहराई है वह
हे ब्रह्माण्डव्यापिनी
अनंतिनी
महातापिनी
महापापिनी
''जब तक तेरा पुण्य का
बीता नहीं करार
तब तक तुझको माफ है
चाहे गुनाह करो हजार!''...
इस सूक्ति की स्मृति भर
मन में रखकर
पुरुषार्थ-क्षेत्र में
निशिदिन तत्पर
हूँ मैं इधर
मत गिन
वे दिन
अब दूर नहीं...
सरपट भाग रहा है
काल
झटपट जाग रहा है
पुरुषार्थ का फल
भाग्य का विशाल
भाल!
प्रभातीय लालिमा सा
ललित लोहित लाल

उदीयमान
सुखद भानु बाल
लो भगवत्पाद मूल
मिला भावना का फल
तत्काल
साधना के सम्मुख
नाच नाचता
काल
चलता साधक के अनुकूल
धीमी धीमी चाल
और ज्ञात हुआ
अज्ञात विषय
कि रसना
पराश्रित रस चख नहीं सकती
षड्रस नवरस
ये रस नहीं
नयना-गम्य अदृश्य
रस-गुण की विकृतियाँ
क्षणिका जड़ की कृतियाँ
आत्मा अरस रहा
रसातीत
समरस रसिया
निज रस लसिया
निज घर वसिया
निश्चय से
औ रसीली रसना
नहीं मरती

अमरावती
अजरा अमरा
लीलावती
तभी वह
सर्वप्रथम
भक्ति भाव से भीगी
भक्ति रस गुणगान
अनुपान
करती करती कब
अनजान
यह रसना
समरस सिंचित
सौम्य सुगंधित
पराग-रंजित
प्रभुपद-पंकज में
तात्कालिक
अपनी परिणति
आकुंचित कर
संकोचित कर
संक्रमित संक्रान्त
होती है
किन्तु कभी कभी
लोमानुलोम
या प्रतिलोम क्रम से
सरस!! सरस!!! सरस!...

परम स्वातम रस
अरस आतम से
वार्ता करती बस...!
जिससे संचारित है
संचालित
आत्मा के वे, नस नस!!...
संयत सहज
शान्त सुधा रस
पीती जाती...
पीती जाती...
अपनी आँखें
निमीलित कर
कर वाचा गौण
मौन
भावातीत
स्फीत उदीत
समीत सम्वेदना में
डूबी जाती
अनंत अन्तिम छोर...
...की ओर
...डूबी जाती...डूबी जाती
विषयासक्त
कामुक भावों से उद्‌भूत
अभिभूत
आधियाँ
पूर्वकृत विकृत

कर्मोदय संपादित
महा व्याधियाँ
और
भौतिक/लौकिक/बौद्धिक
पर संबंधित
बाहरी भीतरी
उपाधियाँ
अनपेक्षित कर!...
संकल्प-विकल्पों
नाना जल्पों
नहीं छूती
रह अछूती
निर्विकल्प
समाधि निःसृत
रसास्वाद से
स्वादित
अयि! रसना
अमित अनागत काल तक...
मेरी बनी रहे.
...शरणा!

❑ ❑ ❑

दीन नयन ना

निश्चल
निश्छल
संवेदनशील
समता छलकती
लोचनों में
धवलिमा मिश्रित
गुलाब फूल की
हलकी लालिमा सी भी
तरल रेखा
नहीं नहीं...
कभी न खिचें
निन्दोपजीवी
मतिहीन/दीन
विषयों, कषायों में
सतत संल्लीन
मानव मुख से
आश्रव्य निन्द्य वचन
सुनकर
हे करुणाकर!
गुणगण आकर!

❑ ❑ ❑

राजसी स्पर्शा

ओ री स्पर्शा!
तेरा वेदन
सम्वेदन
क्या सो गया है ?
क्या खो गया है ?
आज तुझे
हो क्या गया है ?
तू वृत्तिवाली राजसी
उल्लास हास की आली
रसीली मतवाली
विलासिता राजसी
अनुभव करने वाली
आज विराज रही
एक कोने में
नाराज सी
विश्व उपेक्षिता
सहज समाधिलीन
मुनि महाराज-सी
विषय-विमुखा
विरागिनी विपरीता
रीता

अवनीता
स्वयं को किया है
अनुपम उत्तम
भाव–मालाओं से
गिरि उन्नीता
नीता
विलोकिनी
हल्की सी
गंभीरा भय भीता
भव से है ?
...क्या मुझसे है ?
किससे है ?
ऐसी सम्पृच्छना वाली
भावना मन में उठी ही थी
उससे पूर्व ही
अश्रुतपूर्वा
अपूर्व ध्वनि
तरंग क्रम से
ध्वनित/निनादित हुई
आतम के गूढ़ निगूढ़तम प्रान्त में
...किन्तु
अनुभूत हुआ कि
वह मौन
और गहन गहनतम
होता जा रहा है
यथार्थ में

वह ध्वनि नहीं है
औ किसी परिचित से
प्रेषित/संप्रेषित
संप्रेषण शक्ति भी नहीं है
बहिर्जगत का संबंध
टूट जाने से
पदार्थ का ही सहज परिणमन
निरन्तर जो हो रहा है
केवल अनधिगत का
अधिगमन हुआ...
कर्कश कठोरता से
मखमल कोमलता से
लघुता से क्या ?
गुरुता से क्या ?
स्निग्ध स्नेहिल
रूक्ष रेतिल
रे तिल!
चंदन चन्दर शीतल क्या ?
धू-धू करती ज्वाला से क्या ?
कुन्दन कुंकुम से क्या ?
दल दल पंकिल से क्या ?
मैं स्पर्शा
स्पर्शातीता तर्षातीता
हर्षातीता हो
"अलिंग-गहण"...

लिंगातीत
गाढ़ालिंगित होकर भी
स्पर्शातीता हूँ...!
यह भाव जब ध्वनित हुआ
तब विदित हुआ कि
मैं भी अस्पर्श हूँ
अब किसको छू सकता
कैसा कौन मुझे
छू सकता
तू ही फूल बन जा
तू ही शूल बन जा
तेरी छुवन से
भीतरी चुभन से
मेरे प्रतिप्रदेश
स्पर्शित हों
हर्षित हों
ओ ...री...स्पर्शा...!!

❑ ❑ ❑

श्राव्य से परे

धनी जनों
धी धनों
औ
तपोधनों
के मुख से
अपनी प्रशंसा के
सरस श्राव्य/श्रुतिमधुर
गीत सुन
हृदय में
गद्‌गद हो
कभी भूल
स्वप्न में भी
कठपुतली-सा
नर्तक बन
करे न नर्तन
टुन टुन...टुन टुन
यह मेरा
संयमित
नियंत्रित
समाधितंत्रित
भावित मन...
हे! अमन!
हे! चमन!

❑ ❑ ❑

ओ नासा

चाँदी की चूरणी छिड़की
चाँदनी की रात है
चिदानन्द गंध से
घम घम गंधित
सौम्य सुगंधित
उपवन की बात है
जिसमें
सहज सुखासीन
निज में लीन
यथाजात
जिसकी गात है
सुगन्ध निधि
निशिगंधा
अन्य दुर्लभा
अपनी सुरभि से
वातावरण के कण कण को
सुवासित सुरभित करती
निवेदन करती
आज विलम्ब हुआ
अपराध क्षम्य हो!...
ओ री नासा...!

नैवेद्य प्रस्तुत है
पारिजात स्तुत है
स्वीकृत हो...!
अनुगृहीत करो
उत्तर के रूप में
बोध भरित
सम्बोधन
मौन भावों से
कुछ भाव
अभिव्यंजित हुए
माना तू गंधवती है
किन्तु
इस ज्ञान कली में भी
सुगंधि फूटी है
फूली महक रही है
कि
तू केवल ज्ञेया भोग्या
'गंधवती' है
'गंधमती' नहीं
मैं स्वयं गंधमती
तू बोध विहीना
क्षणिका
नहीं जानती
सुखमय जीवन जीना
पुरुष के साथ
ऐक्य होकर
सुरभिका
दुरभिका...

...सृजन कहाँ होता है
स्रोत किस निगूढ़ में है
इसका स्रजक/जनक
कौन है वह...?
मौन कार्यरत है
वही ज्ञातव्य है
यही प्राप्तव्य है
इसलिए
मौन वेषिका
बन गवेषिका
अनिमेषिका
अज्ञात पुरुष की गवेषणा को
सफलता की पूरी आशा ही
नहीं
अपितु पूर्ण विश्वस्त हो
हुई हूँ उद्यमशीला मैं
इसी बीच...!
दाहिनी ओर से
लचक चाल की
मदन मोहिनी
रति-सी
मृदुल मालती
मुख खोल

कुछ बोल बोलती
अधर डोलती
कि
नामानुसार काम
कर रही है आज!...
इच्छा वांछा तृष्णा
आशा की छाया तक
नहीं तेरी नासा की अनी पर
विराग की साक्षात् प्रतिमा-सी
ओ नासा...!
मतकर मुझे
निराश/उदास
तनक सा... पल भर...
कपाट खोल
मृदु बोल बोल
परम पुरुष महादेव को
तृप्त परितृप्त करूँ
यह दुर्लभ सुरभि
श्रद्धा समेत
लाई हूँ...
ये कई बार
...विगत में
मेरी सुगंध सुरभि में
स्नपित स्नात हुए हैं
शान्त हुए हैं
नितान्त....! प्रभु....!

संक्षेप समास में
सांकेतिक ध्वनि
ध्वनित हुई
वे अन्तर्धान हैं
निर्ध्यान हैं
मौन निगूढ़ में
तेरी ही क्या...मेरी भी
अब उन्हें रही नहीं अपेक्षा
विश्व उपेक्षा ही अपेक्षित
निरालम्ब....स्वावलम्ब
शून्याकाश
प्रकाशपुंज
जिस अनुभव के धरातल पर
प्रतिपल
फलित हो रहा है
बहना...बहना...बहना..
वह ना... वह ना...
वह ना ...
नव नवीन
नित नूतन होकर भी
तुलना अन्तर
विशेष नहीं
सहज सामान्य
शेष
भेद नहीं अभेद

वेद नहीं अवेद
खण्ड नहीं /द्वैत नहीं
अखण्ड अद्वैत
अविभाज्य स्वराज्य
चल रहा है स्वयं
किसी इतर चालक से
चालित नहीं
गंध...गंध...गंध...!
केवल गंध !
सुगंध कहना भी
अभिशाप है
पाप है अब
अनुतापित करना है
स्वयं को वृथा
संज्ञा बन कर
सूँघना नहीं
मूर्छित ऊँघना नहीं
प्रज्ञा बनकर
सूँघना ही
वरदान....!
मतिमती
मैं नासिका
ध्रुव गुण की
उपासिका
प्रकाश की छाया
प्रकाशिका
न दुर्गंध से

न सुगंध से
प्रभाविता
भाविता
गंध से!...
गंधवती
गंधमती
गंधातीता
बंधातीता
मेरा भोक्ता
गंध से परे
अगंध पुरुष!...
मैं भोग्या योग्या
कामपुरुष की
आई हूँ
आशातीता
मैं नासा
चरणों में
मात्र मिले बस!
चिरवासा...
सहवासा...!

❑ ❑ ❑

सब में वही ... मैं ...

अनुचरों
सहचरों
औ
अग्रेचरों
के विकासोन्मुखी
विविध गुणों की
सुरभि-सुगंधि की
जो अपनी धीमी गति से
सुगंधित करती
वातावरण को
फैल रही...
...उपहासिका
नहीं बने
किन्तु...
सुगंधि को
सूँघती हुई
पूर्ण रूपेण
सादर/सविनय
अपने चारों ओर
बिखरे हुए
घिरे हुए
काँटों को भी
खुल खिल हँसने
जगने

मृदुतम बनने की
प्रेरणा देती हुई
सकल दलों सहित
उत्फुल्ल फूलों-सी
फूली न समाये
यह मम नासिका
बने...ध्रुव गुण उपासिका
ऐसी दो आसिका
गुणावभासिका
हे अविकल्पी
अमूर्त शिल्प के शिल्पी...!

❑ ❑ ❑

हुआ है जागरण

स्पर्श की स्थूल परिणति से
स्थिति से
औ इति से भी
बहुत दूर
ऊपर उठे
सूक्ष्मता में अवतरण
समावतरण
अपरिचित के परिचय का
अर्घावतरण
मौन एकान्त
विजन में
जाति जरा मरण
आवरण
करते हैं
निरावरण का अनावरण का
वरण
अनुसरण
स्वयं बन कर
शरण
आवरण की शरण का
अपहरण!

अकाय!
असहाय!
इस काय की छुवन में
अब नहीं आ सकते
  मत आओ...
    कौन कहता कि आओ ?
    फिर भी कहाँ बसोगे...?
    कहाँ लसोगे...?
    अपने लावण्य लेकर
    इसी भुवन में ना...!
आनंदित
अभिनंदित
स्वतन्त्र स्वाश्रित
सौम्य सुगन्धित
चन्दन वन में
नन्दन वन में ना...!
    हे निरावण!
    हे अनावरण!
    दुःख निवारण कर दो
अकारण
इसने सावरण का
कर लिया है वरण
    भूल से
    उतावली के कारण
    अनन्तकाल से
    सहता आया
    जनन जरा मरण

किन्तु अब सुकृत
हुआ है जागरण
करके एकीकरण
त्रिकरण
कर रहा मात्र
आपके नामोच्चरण
होने तुम सा...
निरा! निरामय
नीराग...
निरावरण!

❑ ❑ ❑